Shodhshauryam, International Scientific Refereed Research Journal
© 2022 SHISRRJ | Volume 5 | Issue 6 | ISSN : 2581- 6306

भारतीय हस्तशिल्प का इतिहास

कुमकुम मिश्रा
शोधार्थी (गृह विज्ञान) रानी आवंतीवाई लोधी राजकीय महिला महाविद्यालय, बरेली।
प्रो. (डॉ.) मनीषा राव
शोध निर्देशक,रानी आवंतीवाई लोधी राजकीय महिला महाविद्यालय, बरेली।

शोधसारांश– भारत प्राचीन काल से ही अपनी कला और संस्कृति के लिए प्रसिद्ध रहा है। भारत की कलाकृतियों को देश–विदेश में प्राचीन काल से ही सराहा जाता रहा है। भारत देश में प्रदेशों की अपनी अलग ही कला शैलियां हैं जो उनकी पहिचान है, जिन्हें लोक कला के नाम से जाना जाता है। इसी प्रकार भारत में हस्तशिल्प का कारोबार भी बहुत प्रसिद्ध है। मोहनजोदड़ो, हड़प्पा आदि समय की कलाकृतियों, आभूषणों, बर्तनों आदि में भी भारतीय हस्तशिल्प का बेजोड़ नमूना देखने को मिलता है। हस्तशिल्प कारोबार देश की अर्थव्यवस्था में भी महत्वपूर्ण योगदान देता है। हमारे देश के हस्त शिल्प से बनी चीजों की विदेशों में बड़ी डिमांड है, जिससे देश की अर्थव्यवस्था पर एक सकारात्मक प्रभाव पड़ता है। आज भी हस्तशिल्प उद्योगों में महत्वपूर्ण भूमिका निभाने वाले राज्य हैं मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश, बिहार, झारखंड, छत्तीसगढ़, राजस्थान, उड़ीसा आदि। अभी भी उत्तर प्रदेश के हस्तशिल्प का कारोबार विश्व प्रसिद्ध है, जैसे बनारस की साड़ियां, लखनऊ की चिकनकारी, बरेली का जरी कारोबार, रामपुर का एप्लीक, आगरा के जूते, अलीगढ़ के ताले, भदोही का कालीन, फर्रुखाबाद की चूड़ियां, कन्नौज का इत्रा आदि पूरे विश्व में मशहूर हैं। पारंपरिक हस्तकला (हाथ से कताई–बुनाई) भारत की विरासत का एक बड़ा हिस्सा रही है। खेती की तरह ही यह क्षेत्रा भी भारत के बड़े हिस्से को रोजगार उपलब्ध कराता है। हाथ से निर्मित प्राचीन दुर्लभ वस्तुओं और विशेष पारंपरिक संरचना के प्रति रुचि को देखते हुए हथकरघा व्यवसाय व्यापक और सार्वभौमिक रूप से फैल रहा है, हालांकि हस्थशिल्प उद्योग की वित्तीय स्थिति लगातार विघटित हो रही है। बुनकरों द्वारा देखे जाने वाले मुद्दों में विश्वव्यापी बाजारों में प्रतिस्पर्धा, कम वेतन, तैयार माल की खराब बाजार लागत और खरीदारों तक पहुंचने में असमर्थता शामिल हैं। (संध्या रानी दास, 2015)
मुख्य शब्दः हस्तकला, शिल्पकला, कलाकृतियां, कारीगर, कौशल, पेशा, व्यापार आदि।

शिल्पकला एक परिचय–शिल्प एक विशेष कलाकृति है जिसमें कलात्मक और रचनात्मक कौशल शामिल होते हैं। मोटे तौर पर, इसे एक पेशे, व्यापार या व्यवसाय के रूप में दर्शाया जा सकता है। शिल्प सामग्री के कलात्मक अनुशासन के माध्यम से मूल वस्तुओं के निर्माण को संदर्भित करता है। शिल्प करने की क्रिया का अर्थ है 'कौशल के साथ बनाना या फैशन करना, विशेष रूप से हाथ से' (हैंक्स, 1979), जबकि आमतौर पर शिल्प के रूप में मानी जाने वाली गतिविधियों में

Copyright: © the author(s), publisher and licensee Technoscience Academy. This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution Non-Commercial License, which permits unrestricted non-commercial use, distribution, and reproduction in any medium, provided the original work is properly cited

बुनाई, छपाई, कढ़ाई, नक्काशी आदि शामिल हैं। तान्या हैरोड (1995) शिल्प को एक ही व्यक्ति द्वारा निर्मित और डिजाइन के रूप में परिभाषित करती है। यह परिभाषा इस तथ्य पर जोर देती है कि, शिल्प निर्माता वह है, जो संबंधित वस्तुओं के उत्पादन में शामिल सभी प्रक्रियाओं पर व्यक्तिगत नियंत्राण रखता है। इसलिए, शिल्प कार्यकर्ता वह होता है जो उत्पादों के लिए डिजाइन चुनता है, आवश्यक सामग्री का चयन करता है और, कुल मिलाकर, वस्तु स्वयं बनाता है। इस प्रकार, शिल्प निर्माता वह है जो अपने व्यक्तित्व या स्वयं को उस वस्तु में निवेश करता है जिसे वह उत्पादित करता है और, इन्हीं वजहों से इसको मानव प्रकृति के अधिक मानवीय, रचनात्मक और सौंदर्य संबंधी पहलुओं को अभिव्यक्त करने वाला माना गया है।

शिल्प कला की विशेषताएँ

कुछ प्रमुख विशेषताएं हैं जिससे शिल्प को पूरी तरह से समझा जा सकेगा। सबसे पहले, इसे हाथ से बनाया जाना चाहिए। कोई भी कुशल कारीगर किसी भी शिल्प कृति को बनाने और उसे मूर्त रूप देने में कई घंटे बिताता है। दूसरे, शिल्प का संबंध उसकी अतीत की विरासत और संस्कृति से होता है। प्रत्येक शिल्प अनुशासन बहुआयामी घटनाओं और घटनाओं की प्रवृत्तियों और परंपरा का प्रतीक है जो पिछले दशकों से उनके साथ निकटता से जुड़े हुए थे। तीसरा, शिल्प विशिष्ट है और यह हमेशा एक सामग्री और शिल्प वस्तुओं को बनाने के लिए उपयोग की जाने वाली तकनीकों से पहचाना जाता है। चौथा, शिल्प को उसके उपयोग से परिभाषित किया जाता है। इसका उपयोग कैसे और कहां किया जाए, यही बात किसी शिल्प को अलग बनाती है। कुछ शिल्पों का उपयोग सजावटी वस्तुओं के रूप में किया जाता है और इसलिए उन्हें सजावटी शिल्प कहा जाता है। इस क्षेत्रा में सिरेमिक, फर्नीचर, फर्निशिंग, इंटीरियर डिजाइन और वास्तुकला शामिल हैं। इनका उपयोग पारंपरिक सजावटी कार्यों के रूप में किया जाता है, आमतौर पर लकड़ी, धातु या वस्त्रा से। सजावटी कला या साज–सज्जा, स्थिर (उदाहरण के लिए, दीवार भित्तिचित्रा) या चल (उदाहरण के लिए लैंप) हो सकती है।

अकेले या छोटे समूह में काम करने वाले स्वतंत्रा कारीगरों द्वारा किए गए शिल्प को अक्सर स्टूडियो शिल्प कहा जाता है। स्टूडियो शिल्प में स्टूडियो पॉटरी, आर्ट मेटलवर्क, वुडटर्निंग आदि शामिल हैं। अन्य शिल्प वस्तुएं भी हैं जिन्हें उपयोगितावादी शिल्प कहा जाता है। यह लोगों के दैनिक जीवन में शिल्प की कार्यात्मक उपयोगिता की ओर इशारा करता है। इनमें धातु के बर्तन और मिट्टी के बर्तन के सामान आदि शामिल हैं।

इन दिनों 'शिल्प' शब्द वास्तव में हस्तशिल्प शब्द के शॉर्टहैंड संस्करण के रूप में उपयोग किया जाता है, एक ऐसा शब्द जो तुरंत पारंपरिक श्रमिक जो हाथ से वस्तुओं का उत्पादन करता है, और आधुनिक कारखाने के श्रमिक, मशीनों की सहायता (कॉलिन, 2005) से वस्तुओं का उत्पादन करता है, के बीच अंतर की ओर ध्यान आकर्षित करता है। हालाँकि,

'हस्तशिल्प' गतिविधि को मशीनों की पूर्ण अनुपस्थिति के साथ जोड़ना गलत होगा, क्योंकि मिट्टी के बर्तन और बुनाई जैसे पारंपरिक शिल्प में स्पष्ट रूप से 'मशीनों' (कुम्हार के पहिये और करघा) का उपयोग शामिल है। इसलिए, हस्तशिल्प और निर्माण के आधुनिक रूपों के बीच अंतर मशीन की अनुपस्थिति पर नहीं है, बल्कि यह हस्तशिल्प को ''हाथ से'' (या पैर से) संचालित करने और सीधे कारीगरों द्वारा नियंत्रित करने को दर्शाता है। विरोधाभास वास्तव में हाथ से किए जाने वाले उत्पादन और मशीनी उत्पादन के बीच नहीं है, बल्कि यह एक ऐसी उत्पादन प्रणाली के बीच है जिसमें श्रमिक प्रक्रिया पर पूर्ण नियंत्राण रखता है। इसलिए, कार्ल मार्क्स और थोरस्टीन वेब्लेन जैसे प्रारंभिक सामाजिक आलोचकों ने कारीगरों द्वारा किए गए श्रम के रूपों को सभी मानव गतिविधियों में सबसे आदर्श माना। इसे सक्षम और मानवीय बनाने के रूप में देखा गया।

आज, शिल्प के दो अलग–अलग प्रकार बचे हैं– औद्योगिक शिल्प और हस्तशिल्प (टिमोथी, 2003)। मुद्रण और डाई–निर्माण जैसे औद्योगिक शिल्प, शिल्प संघों में संगठित हैं क्योंकि उनके कौशल के लिए बाजार आम तौर पर सार्वजनिक और निजी स्वामित्व वाले बड़े औद्योगिक निगमों के भीतर होते हैं। औद्योगिक क्रांति के दौरान अधिकांश उपभोक्ता वस्तुओं का बड़े पैमाने पर उत्पादन करके औद्योगिक शिल्प ने हस्तशिल्प को विस्थापित कर दिया। फिर भी काफी हस्तशिल्प इस क्रांति से बच गया। हस्तशिल्प में व्यक्तिगत शिल्पकार, उनकी सहकारी समितियां और हस्तनिर्मित वस्तुओं के उत्पादन और वितरण नेटवर्क में लगे समूह शामिल हैं, जो आम तौर पर उपयोगितावादी प्रकृति के होते हैं और कलात्मकता की अलग–अलग डिग्री का प्रतीक होते हैं। हस्तशिल्प कौशल का उपयोग लकड़ी से धातु तक, कपास से ऐक्रेलिक फाइबर तक, मिट्टी से चांदी तक, कागज से स्टील तक, पत्थर से फर तक सामग्री में सुन्दरता लाने के लिए किया जाता है। ऐसे कौशल आम तौर पर करके सीखे जाते हैं। वे मूलतः अनुभवात्मक हैं। फिर भी, वे इस अर्थ में सच्चे अनुशासन का प्रतिनिधित्व करते हैं कि तकनीक को सीखा और महारत हासिल किया जाना चाहिए ताकि आवेदन में पारदर्शी हो सके।

शिल्पकला में समसामयिक परिवर्तन

समकालीन परिप्रेक्ष्य से देखने पर शिल्प का अर्थ आम लोगों की रचनात्मक अभिव्यक्ति से कहीं अधिक है। शिल्प गतिविधियों में विकास समाज और अर्थव्यवस्था के विकास के लिए संदर्भ बिंदु है। यही कारण है कि सामाजिक विकासवादी तर्कों को तैनात करने के लिए शिल्प कार्य अक्सर सामाजिक सिद्धांतकारों के लेखन के केंद्र चरण में आते हैं। उदाहरण के लिए, पैटरसन (2003) ने पूर्णकालिक शिल्प विशेषज्ञों के उदय को बढ़ते सामाजिक संरचनात्मक भेदभाव, खाद्य–उत्पादकों और कारीगरों की उभरती परस्पर निर्भरता और बाजार विनिमय की वृद्धि के हिस्से के रूप में देखा। पिछले कुछ दशकों में, ध्यान शिल्प विशेषज्ञता के मूल और ऐतिहासिक विकास से हटकर निकट से संबंधित मुद्दों की एक श्रृंखला की ओर स्थानांतरित हो गया है, जैसे कि एक विशेष सामाजिक–आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक सेटिंग्स में उत्पादन का संगठन, कारीगरों की सामाजिक–सांस्कृतिक पहिचान, उनके द्वारा उत्पादित वस्तुओं का उपयोग या उपभोग,

और यहां तक कि उन वस्तुओं से जुड़े सांस्कृतिक अर्थ भी इसमें शामिल हैं (शॉर्टमैन और अर्बन, 2004, स्टीन, 1998, स्टीन और ब्लैकमैन, 1993)। इनसे शिल्प उत्पादन और प्राचीन राजनीतिक अर्थव्यवस्थाओं में इसके स्थान के बारे में हमारी समझ में उल्लेखनीय वृद्धि हुई है। इन मुद्दों में भी, शिल्प विशेषज्ञता का ऐतिहासिक विकास मूल्यवान संदर्भ बिंदु बना हुआ है, विशेष रूप से घरेलू अर्थव्यवस्था से उत्पादन के पूंजीवादी मोड में संक्रमण के दौरान होने वाली गतिशीलता के संबंध में। पूंजी अर्थव्यवस्था के आगमन के साथ, शिल्प उत्पादन को कार्य संरचना, डिजाइन और प्रौद्योगिकी, उपयोगिता आदि पर कई प्रभावों का सामना करना पड़ता है। प्राथमिक परिवर्तनों में से एक यह है कि व्यापारी उत्पादन प्रक्रिया की एक प्रमुख शक्ति बन गए हैं।

ब्रेनर (1989) का तर्क है कि ''बाजार ने विभिन्न कस्बों के अब तक संरक्षित शिल्पों के बीच तीव्र प्रतिस्पर्धा को अंततः जटिल, एकीकृत शिल्प को घटक भागों में तोड़ने के लिए मजबूर कर दिया। शिल्प के खंडहरों पर निर्माण के बढ़ने से विशेषज्ञता का एक नया रूप सामने आया, जिसका गठन सरलीकृत 'विस्तृत' उत्पादन करने वाली अलग–अलग इकाइयों द्वारा किया गया और विनिर्माण के आधार पर सहयोग का एक नया तरीका आया जिसमें व्यापारी अर्ध–कुशल श्रम को नियंत्रित करते हैं।''

इस प्रकार, सामाजिक–आर्थिक विकास को चलाने वाले समकालीन सामाजिक संबंध वस्तु उत्पादन, बाजार विनिमय और मजदूरी श्रम पर आधारित पूंजीवादी संबंध हैं। इस प्रकार के औद्योगीकरण के कई परिणाम हुए। इसने कुशल कारीगरों के विकास को बढ़ावा दिया। व्यापारी उत्पादन के साथ अधिक निकटता से जुड़ने लगे और स्थानीय, क्षेत्रीय और वैश्विक बाजारों का नेटवर्क बनाया। हालाँकि, इन सभी परिवर्तनों के कारण शिल्प के लिए आवश्यक गुणात्मक परिवर्तन के बजाय मात्रात्मक दृष्टि से शिल्प उत्पादन की ओर ध्यान केंद्रित हो गया है (पैटरसन, 2005)।

भारत में हस्तशिल्प

विविध सांस्कृतिक प्रथाओं वाला विशाल देश होने के नाते भारत हस्तशिल्प की एक विशाल श्रृंखला प्रदान करता है। भारत के अधिकांश क्षेत्राों की अपनी विशिष्ट शिल्प परंपरा है। भारत में हथकरघा और हस्तशिल्प खंड अत्यधिक खंडित और असंगठित हैं। साथ ही यह क्षेत्रा भारत को अपनी विशिष्ट सांस्कृतिक पहचान देता है और भारत में आर्थिक गतिविधियों में महत्वपूर्ण योगदान देता है। देश के ग्रामीण क्षेत्राों में प्रमुख हस्तशिल्प क्षेत्रा श्रम प्रधान हैं क्योंकि उत्पाद आमतौर पर साधारण हाथ से पकड़े जाने वाले उपकरणों का उपयोग करके हस्तनिर्मित होते हैं। सदियों से भारतीय कारीगरों ने प्राकृतिक कच्चे माल जैसे लकड़ी, प्राकृतिक रेशे, पत्थर/संगमरमर, मिट्टी, धातु, चमड़ा, कपड़ा आदि का उपयोग करके अत्यधिक कलात्मक उत्पाद विकसित किए हैं।

देश की वर्तमान शिल्प विरासत तीन प्रमुख कला परंपराओं की वंशावली है जो कई शताब्दियों में विकसित हुई। प) ''सामूहिक'' शिल्प और कलाएं, जो सिंधु सभ्यता से चली आ रही हैं और सदियों के विकास के माध्यम से विकसित हुईं, मुख्य रूप से आम लोगों की उपयोगितावादी और अनुष्ठान संबंधी जरूरतों को पूरा करने के लिए; पप) ''क्लासिक कला''

परंपरा जो उच्च वर्ग के सौंदर्य मूल्य के जवाब में राजाओं और अन्य शासक वर्ग के संरक्षण के साथ विकसित हुई; और पपप) मंदिर कला, जिसने भारतीय उपमहाद्वीप में पत्थर की नक्काशी और मूर्तिकला निर्माण में अत्यधिक परिष्कृत शिल्प कौशल विकसित करने का मार्ग प्रशस्त किया। भारत में शिल्प निर्माण में एक अन्य महत्वपूर्ण तत्व डिजाइन और प्रक्रिया के स्रोत के रूप में इसका गहरा आध्यात्मिक अनुभव है। लोगों के बीच प्रचलित मिथकों और किंवदंतियों का शिल्प पर सार्थक प्रभाव पड़ा (भारत सरकार, 1981)। ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में देखें तो, देश की शिल्प विरासत की एक लंबी परंपरा है, जो लगभग पांच हजार साल पहले की है। भारतीय भौतिक संस्कृति के विकास के इतिहास का विश्लेषण भारत द्वारा कई सहस्राब्दियों में अर्जित शिल्प विरासत की समृद्धि का एक समृद्ध विवरण प्रदान करता है।

प्राचीन काल में शिल्पकला

भारत के इतिहास का अध्ययन इस बात पर प्रकाश डालता है कि प्राचीन भारतीयों ने खेती, कताई, बुनाई और धातु के काम के माध्यम से अपनी आजीविका के साधनों के लिए प्राकृतिक संसाधनों की खोज और उपयोग कैसे किया। भारतीय उपमहाद्वीप के विभिन्न स्थलों में पुरातात्विक उत्खनन विभिन्न शिल्पों के विकास को समझने में सहायक हैं। उत्खनन से उन शहरों का पता चला है जिन्हें लोगों ने उत्तर–पश्चिमी भारत में लगभग 2500 ईसा पूर्व स्थापित किया था और यह उन भौतिक संस्कृतियों के बारे में बताता है जो गंगा के मैदानी इलाकों में विकसित हुई थीं। इन शिल्पों और वस्तुओं के अवशेष क्षेत्रा के सांस्कृतिक लोकाचार के साथ–साथ समुदाय की तकनीकी प्रगति को दर्शाते हैं।

भारत में, नवपाषाणकालीन निवासी (2000 ईसा पूर्व – लगभग 1000 ईसा पूर्व) सबसे शुरुआती कृषक समुदाय थे। वे अधिक उन्नत थे, इसी काल में सबसे पहले मिट्टी के बर्तन दिखाई दिये। प्रारंभिक अवस्था में हस्तनिर्मित मिट्टी के बर्तन मिलते हैं। बाद में, नवपाषाण काल के लोगों ने बर्तन बनाने के लिए पैदल पहियों का उपयोग किया। उनके मिट्टी के बर्तनों में काले जले हुए बर्तन, भूरे बर्तन और चटाई से प्रभावित बर्तन शामिल हैं (नाथ सेन, 1999)। नवपाषाण काल के अंत में धातुओं का उपयोग शुरू हुआ। इसमें कैथोलिथिक कला और शिल्प का अच्छा वर्णन है (बाशम, 1975)। वे स्पष्ट रूप से तांबा गलाने वाले विशेषज्ञ थे। ऐसा कहा जाता है कि वे अर्ध–कीमती पत्थरों के मोतियों का निर्माण करते थे। लोग कताई और बुनाई की कला जानते थे क्योंकि चरखे की खोज मालवा से हुई है। महाराष्ट्र में कपास, सन और रेशम के धागे पाए गए हैं। विभिन्न स्थलों पर इन शिल्पों का अभ्यास करने वाले कारीगरों के अलावा, पुरातत्वविदों को इनामगांव में कुम्हारों, लोहारों, हाथीदांत नक्काशी करने वालों, चूना बनाने वालों और टेराकोटा कारीगरों के साक्ष्य मिले। हड़प्पा सभ्यता के स्थलों की खुदाई से पता चलता है कि वे कांस्य के निर्माण और उपयोग से बहुत अच्छी तरह परिचित थे (हंटर 1973)। हड़प्पावासियों द्वारा छोड़ी गई कांस्य देवताओं की मूर्तियां विचारणीय है, जिससे पता चलता है कि कांस्य–स्मिथ प्राचीन भारतीय सभ्य समाज में कारीगरों का एक महत्वपूर्ण समूह थे। उन्होंने मूर्तियाँ, बर्तन, औजार और हथियार बनाये। हड़प्पा के कस्बों में कई अन्य शिल्प विकसित हुए (शर्मा, 1987)। मोहनजोदाड़ो से बुने हुए कपास का एक टुकड़ा बरामद किया गया है, और कई वस्तुओं पर कपड़े के निशान पाए गए हैं। कताई के लिए स्पिंडल व्होरल

ैचपदकसम ूीवतस) का उपयोग किया जाता था। बुनकर ऊन और कपास से कपड़ा बुनते थे। कुम्हार का चाक पूर्ण उपयोग में था। हड़प्पावासी चमकदार मिट्टी के बर्तन बनाते थे।

ऋग्वेद में बढ़ई, रथ निर्माता, बुनकर, लाख कारीगर, कुम्हार आदि जैसे कारीगरों का उल्लेख है (शर्मा, 1995)। इससे पता चलता है कि वैदिक काल (ईसा पूर्व 1500–700 ईसा पूर्व) में लोग इन सभी शिल्पों का अभ्यास करते थे। तांबे या कांसे के लिए प्रयुक्त 'अयास' शब्द से पता चलता है कि धातु–कार्य ज्ञात था। उत्तर वैदिक काल के लोग चार प्रकार के मिट्टी के बर्तनों से परिचित थे– काले और लाल बर्तन, काले चिकने बर्तन, चित्रित भूरे बर्तन और लाल बर्तन। बाद के वैदिक ग्रंथों में भी आभूषण श्रमिकों का उल्लेख किया गया था और वे संभवतः समाज के अमीर वर्गों की जरूरतों को पूरा करते थे। व्यवसाय के आधार पर सामाजिक वर्गीकरण वैदिक काल के दौरान शुरू हुआ (भारत सरकार, 1981)। वैदिक काल में सामाजिक संगठनों ने समाज को चार वर्णों में विभाजित किया था और कारीगरों को वैश्यों में शामिल किया गया था। रथकर्ण – रथ निर्माता जैसे कारीगरों के कुछ वर्गों को उच्च दर्जा प्राप्त था। शिल्प का महत्व इतना व्यापक था कि कृषि और विभिन्न शिल्प दोनों ने बाद के वैदिक लोगों को एक व्यवस्थित जीवन जीने में सक्षम बनाया।

विभिन्न स्थलों पर पुरातात्विक अन्वेषणों से संकेत मिलता है कि प्री–मौर्यन और मौर्य काल (ई.पू. 700–185 ई.पू.) (भारत सरकार, 1979) के दौरान शिल्प उत्पादन अधिक स्थानीयकृत और विशिष्ट हो गया। प्रारंभिक बौद्ध ग्रंथों में कम से कम अठारह शिल्प और व्यापार संघों का उल्लेख है। इनमें बढ़ई, कुम्हार, पत्थर काटने वाले, हाथी दांत का काम करने वाले, लोहार और सुनार आदि शामिल हैं। कुछ शिल्प स्थानीयकृत थे। वाराणसी जैसे बड़े शहरों के आसपास बढ़ई (वड्डक्की), कुम्हार (कुंभकारा) और लोहार (कम्माकारा) के गांवों का उल्लेख था।

शक, कुषाण, सातवाहन (200 ईसा पूर्व–300 ईस्वी) और पहले तमिल राज्यों का युग प्राचीन भारत में शिल्प और वाणिज्य के इतिहास में सबसे समृद्ध काल था। कला और शिल्प में उल्लेखनीय वृद्धि देखी गई। दीघ निकाय, जो मौर्य–पूर्व काल से संबंधित है, में लगभग दो दर्जन व्यवसायों का उल्लेख है, लेकिन महावस्तु, जो उत्तर–मौर्य काल से संबंधित है, राजगीर शहर में रहने वाले 36 प्रकार के श्रमिकों को सूचीबद्ध करता है। मिलिंडा पैन्हो में लगभग 75 व्यवसायों की गणना की गई है; जिनमें से 60 विभिन्न प्रकार के शिल्पों से जुड़े हैं (गाइल्स, 1933)।

आध्या (1980) ने उस काल के शिलालेखों के विस्तृत विश्लेषण के साथ उस काल के शिल्प परिदृश्य का वर्णन इस प्रकार किया हैः

"कपड़ा बनाना, रेशम की बुनाई और हथियार तथा विलासिता की वस्तुएं बनाने में भी प्रगति हुई। कुछ दक्षिण भारतीय कस्बों में रंगाई एक समृद्ध कला थी। उस काल के शिलालेखों में बुनकरों, सुनारों, रंगरेजों, धातु और हाथीदांत के कारीगरों, जौहरियों, मूर्तिकारों, लोहारों आदि का उल्लेख है और ये सभी बताते हैं कि वे शिल्प समृद्ध स्थिति में थे। विलासिता की वस्तुओं के निर्माण के लिए बने हस्तशिल्प में हाथी दांत के काम, कांच के निर्माण और मनके काटने का उल्लेख किया जा सकता है। आभूषण उद्योग उन्नतिशील स्थिति में था। सिक्का ढालना एक महत्वपूर्ण शिल्प था। इन

शहरी हस्तशिल्पों को टेराकोटा के सुंदर टुकड़ों के निर्माण से पूरक बनाया गया।"

गुप्त काल (335 ई. से 455 ई.) भी प्राचीन भारतीय कला का स्वर्ण युग है। कारीगर धर्म से बहुत प्रेरित थे। बौद्ध धर्म ने मौर्य और मौर्योत्तर काल में कला को बहुत प्रोत्साहन दिया (गाइल्स, 1933)। गुप्त शिल्पकारों ने लोहे और कांसे के काम से अपनी अलग पहचान बनाई। धातु प्रौद्योगिकी में काफी प्रगति हुई। इसके अलावा, कारीगर आभूषण बनाने, लकड़ी पर नक्काशी, मूर्तिकला, पत्थर पर नक्काशी और बुनाई में भी निपुण थे।

छठी शताब्दी ई. में शिल्प उत्पादन में तीव्र गिरावट देखी गई। रोमन साम्राज्य के पश्चिमी भाग से शिल्प व्यापार तीसरी शताब्दी में तथा रेशम व्यापार छठी शताब्दी के मध्य में समाप्त हो गया। गुप्तोत्तर काल में उत्तर भारत में कई पुराने वाणिज्यिक शहरों का विनाश हुआ (शर्मा, 1952)। भारतीय निर्यात के लिए प्रतिबंधित बाजार के कारण, इन कस्बों में रहने वाले कारीगर और व्यापारी ग्रामीण इलाकों में चले गए और खेती करने लगे। व्यापार और कस्बों के खत्म होने के कारण, गाँवों को तेल, नमक, मसाले, कपड़े आदि की अपनी जरूरतें खुद ही पूरी करनी पड़ती थीं। इसलिए, इससे उत्पादन की छोटी इकाइयों का उदय हुआ, प्रत्येक इकाई अपनी जरूरतों को पूरा करती थी।

मध्यकाल में शिल्पकला

भारतीय इतिहास का मध्यकाल शिल्पकला के विकास की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। इसने अपनी आभा का विस्तार दक्षिणी क्षेत्रा तक किया। सातवीं शताब्दी की शुरुआत तक, कादरी में शिल्पकार, बादामी के चालुक्य और मदुरै के पांड्य प्रमुख रूप में उभरे। पहले चरण को कई शिल्पों, आंतरिक और बाहरी व्यापार और शहरों के विकास द्वारा चिह्नित किया गया था। इस चरण में पल्लवों के अधीन तमिलनाडु में और बादामी के चालुक्यों के अधीन कर्नाटक में शिव और विष्णु के लिए पत्थर के मंदिरों के निर्माण की शुरुआत भी हुई। दूसरे चरण की शुरुआत तक, दक्षिण भारत मेगालिथ की भूमि नहीं रह गया था और इसके अंत की ओर हम उस प्रक्रिया को देखते हैं, जिसने अंततः इसे मंदिरों की भूमि बना दिया (शास्त्री, 1976)।

मुगलों के अधीन शाही एकीकरण ने दूर–दराज के क्षेत्रों को जोड़ने वाले आर्थिक संबंधों को मजबूत किया और वाणिज्य के विस्तार को प्रेरित किया। यह काल भारतीय शिल्प इतिहास का स्वर्णिम काल था। मुगल अपने साथ एक समृद्ध विरासत लेकर आए हैं, जिसे उन्होंने फारसी क्षेत्रों से अपनाया है। स्वरूप (1996) ने मुगल भारत की कला और शिल्प के अपने अध्ययन में पाया कि उच्च मुगल समाज की आवश्यकताओं के बाद उत्कृष्ट हस्तशिल्प की सबसे अधिक मांग थी। उन्होंने जड़ना कार्य, कांच पर नक्काशी, कालीन बुनाई और ब्रोकेड, एनामेलिंग आदि जैसी नई तकनीकें प्रदान कीं। 16वीं शताब्दी तक, मुगल शासन के तहत भारत और पश्चिमी यूरोप निकट संपर्क में थे। इसी काल में भारतीय शिल्प परंपरा में भारतीय, ईरानी, चीनी और पश्चिमी तत्वों की मिश्रित संस्कृतियों का विकास हुआ।

उपनिवेशवाद के तहत शिल्प

दरबारी संरक्षण, जजमानी प्रणाली और ग्रामीण आबादी से रोजमर्रा के उपयोगी शिल्प की मांग के साथ, भारतीय शिल्प

को 17 वीं शताब्दी के उत्तरार्ध तक एक स्थिर घरेलू बाजार और दुनिया भर में प्रतिष्ठा प्राप्त थी। हालाँकि, अठारहवीं शताब्दी के मध्य में, मुगल साम्राज्य का युग समाप्त हो गया और इसके बाद कई राजाओं और पश्चिमी शक्तियों द्वारा क्षेत्रीय शासन के लिए शक्ति का खेल शुरू हुआ। यह अवधि शिल्प सहित भारतीय अर्थव्यवस्था में तेज गिरावट के लिए जिम्मेदार थी (सिद्दीकी, 1973)। भारतीय उपमहाद्वीप में ब्रिटिश सत्ता के आगमन के साथ यह मुद्दा और भी गहरा गया।

भारतीय उद्योग के विकास पर गाडगिल (1972) का प्रमुख कार्य कलात्मक उत्कृष्टता और भारत के पारंपरिक उद्योगों के आर्थिक महत्व दोनों में गिरावट के कारणों को रेखांकित करता है। देशी नियमों के लुप्त होने, पश्चिमी शक्ति द्वारा विदेशी शासन की स्थापना और इसके बाद, उद्योग के अधिक विकसित रूप से प्रतिस्पर्धा के कारण उपनिवेशित भूमि की आर्थिक संरचना में आमूल–चूल परिवर्तन हुए। औद्योगिक क्रांति की शुरुआत विश्व इतिहास में एक आर्थिक परिवर्तन का प्रतीक थी। हथकरघा सहित शिल्प, जो औपनिवेशिक शासन से बचने में कामयाब रहे, उन्होंने अलग–अलग उत्पाद बनाकर या साप्ताहिक हाटों में बेचने से लेकर बड़े व्यापारियों और उत्पादकों के साथ अनुबंध करने जैसे संरचनात्मक परिवर्तनों को सूक्ष्मता से अपनाकर ऐसा किया। अविभाजित भारत के रोजगार पैटर्न में बदलाव की जांच करते हुए, कृष्णमूर्ति, जे (1982) ने आधुनिक उद्योग के उद्भव और शहरीकरण की वृद्धि के कारण हस्तशिल्प में रोजगार में भारी गिरावट देखी है। इन परिवर्तनों के अन्य पहलू यह थे कि कारीगर स्थानीय या दूर के बाजार में अपने उत्पादों की बिक्री के लिए व्यापारियों और अन्य बिचौलियों पर निर्भर हो गए।

19वीं सदी के अंत तक, ब्रिटिश सरकार जनता की राय के प्रति कुछ हद तक उत्तरदायी हो गई थी। रॉय (1993) के अनुसार, शिल्प संबंधी प्रश्नों में एक नई रुचि पैदा हुई। इसी परिवेश में जॉर्ज ब्रैडवुड ने अपने दो खंडों वाले क्लासिक इंडस्ट्रियल आर्ट्स ऑफ इंडिया में भारत के शिल्प को सूचीबद्ध किया था। 1895 और 1930 के मध्य के बीच, अध्ययनों और रिपोर्टों की एक श्रृंखला शुरू की गई।

20वीं सदी की शुरुआत में मोहनदास करमचंद गांधी ने अपना स्वराज आंदोलन शुरू किया था। उन्होंने औद्योगीकरण को मानव जाति के लिए अभिशाप के रूप में देखा। 1930 के दशक के अंत तक उन्होंने अभियान को आगे बढ़ाने के लिए ऑल इंडिया स्पिनर्स एसोसिएशन और ऑल इंडिया विलेज इंडस्ट्रीज एसोसिएशन की स्थापना की और उत्पादन और विपणन के केंद्र स्थापित किए। भले ही ये आंदोलन ग्रामीण शिल्प क्षेत्रा के पूरे मुद्दे को संबोधित करने में सक्षम नहीं थे, लेकिन यह राष्ट्र निर्माण के लिए एक महत्वपूर्ण रणनीति के रूप में ग्रामीण उद्योगों की एक सामान्य अपील बनाने में सक्षम थे।

स्वतंत्रा भारत में शिल्पकला

जबकि, ब्रिटिश काल को उदासीनता या विनाश में से एक के रूप में जाना जा सकता है, जिसमें कारीगरों को बाजार ताकतों और औपनिवेशिक हितों की दया पर छोड़ दिया गया था। स्वतंत्राता के बाद, भारत सरकार ने ग्रामोद्योगों को प्रभावित करने वाली समस्याओं की जड़ों की पहचान करने का प्रयास किया। हस्तशिल्प के पुनरुद्धार को एक राष्ट्रीय

नीति के रूप में अपनाया गया। अर्थव्यवस्था के विकास में पारंपरिक शिल्प के योगदान के महत्व को पहचानते हुए, पंचवर्षीय योजनाओं ने न केवल संसाधनों का आवंटन किया, बल्कि इस क्षेत्रा को प्रतिस्पर्धा से बचाने के लिए सुरक्षात्मक उपायों का भी पालन किया।

1950–1960 की अवधि के दशक में ऐसे संस्थानों की स्थापना हुई जो नीति और इसके कार्यान्वयन से निपटते थे। कमलादेवी चट्टोपाध्याय, पापुल जयकुमार, एल.सी.जैन और अन्य लोगों के रचनात्मक दृष्टिकोण ने सरकार द्वारा संस्थागत ढांचे को आकार देने में योगदान दिया। इस अवधि के दौरान, अखिल भारतीय हस्तशिल्प बोर्ड और अखिल भारतीय हथकरघा बोर्ड की स्थापना की गई। कारीगर समुदायों को रचनात्मक नवाचार प्रदान करने के लिए हस्तशिल्प डिजाइन केंद्र और बुनकर सेवा केंद्र स्थापित किए गए थे। सेंट्रल कॉटेज इंडस्ट्रीज एम्पोरियम शिल्प के विपणन के प्रति सरकार की प्रतिबद्धता का मुख्य प्रदर्शन बन गया। इस अवधि में विभिन्न क्षेत्राों के हस्तक्षेप ने शिल्प क्षेत्रा को विभिन्न प्राथमिकताओं के साथ निर्देशित किया; कुछ भारतीय पारंपरिक शिल्प उत्पादों में नई सौंदर्यात्मक अपील पैदा करने पर ध्यान केंद्रित कर रहे हैं, जो समाज के उच्च वर्ग के रूझान और आवश्यकताओं को प्रतिबिंबित करता है, जबकि कुछ सौंदर्यात्मक प्रकृति के सामाजिक कार्य के रूप में आगे बढ़ रहे हैं। शिल्प विरासत के पुनरुद्धार को आकार देने वाली पहल का सबसे अच्छा हिस्सा यह था कि, सरकार ने खुद को इसके बाहर के लोगों द्वारा निर्देशित होने की अनुमति दी, जिनकी शिल्प लोगों के प्रति वास्तविक प्रतिबद्धता थी (जेटली, 2001)।

सत्तर के दशक की शुरुआत में, राज्य सरकारों ने अपने स्वयं के संगठन तैयार किए, और उन्हें व्यक्तिगत कारीगरों या समूहों और उनके द्वारा गठित सहकारी शीर्ष निकायों से जोड़ा। आंध्र प्रदेश में एपीसीओ, तमिलनाडु में को–ऑप्टेक्स और हरियाणा हैंडलूम्स ने देश भर में अपने स्वयं के विपणन आउटलेट स्थापित किए। कई अन्य राज्य सरकारों ने भी उनका अनुसरण किया। राज्य सरकारें भी अपने राज्य हस्तशिल्प या हथकरघा विकास निगमों के विस्तार के रूप में शोरूम स्थापित करती हैं। निर्यात के केंद्रीकृत चैनलिंग के लिए हस्तशिल्प और हथकरघा निर्यात निगम (भ्म्ब्) की स्थापना की गई थी। हालाँकि, 80 और 90 के दशक तक, निजी निर्यात प्रतिष्ठानों ने खुद को विदेशों में फैशन उद्योग से जोड़ लिया, जिससे हस्तशिल्प और हथकरघा निर्यात निगम (भ्म्ब्) की भूमिका कमोबेश निरर्थक हो गई।

राज्य सरकारों के विपणन प्रयासों ने 80 के दशक में इस क्षेत्रा के शिल्प और वस्त्राों को शहरी मानचित्रा पर ला दिया। प्रमुख राज्यों की राजधानियों में शोरूम खोले गए। तमिलनाडु, गुजरात, राजस्थान उन राज्यों में से थे, जिन्होंने उन्हें समर्थन देने के लिए उत्पादन लाइनों के उपायों के साथ–साथ विपणन व्यवस्था में भी शामिल होने की कोशिश की। इस क्षेत्रा में शिल्प के साथ निजी शहरी उद्यमियों का जुड़ाव भी देखा गया है। निर्यात संघों का गठन किया गया और निजी व्यापारिक घरानों ने शिल्प उत्पादन और विपणन में अपनी भागीदारी बढ़ा दी। इस अवधि के दौरान कई सामाजिक कार्य उन्मुख संगठन शिल्प क्षेत्रा के उत्थान में खुद को जोड़ने के लिए आगे आए। सरकारों के कल्याण और आय सृजन कार्यक्रम शिल्प उत्पादकों से जुड़े हुए थे।

इस अवधि के दौरान, हस्तशिल्प विकास आयुक्त का कार्यालय वाणिज्य मंत्राालय से कपड़ा मंत्राालय में स्थानांतरित हो गया था। काउंसिल फॉर एडवांसमेंट ऑफ पीपुल्स एक्शन एंड रूरल टेक्नोलॉजी (ब।च।त्ज) की स्थापना अस्सी के दशक के मध्य में ग्रामीण विकास कार्यक्रम पर स्वैच्छिक शुरुआत को वित्त पोषित करने के लिए की गई थी और उनके कई कार्यक्रम ग्रामीण कारीगरों पर लक्षित थे। सरकारी एजेंसियों और गैर–सरकारी संस्थानों के अलावा, शिल्प उत्पादों के प्रदर्शन और विपणन के अवसर प्रदान करने के लिए राष्ट्रीय और क्षेत्राीय प्रदर्शनियों की एक श्रृंखला आयोजित की गई। इस प्रकार, अस्सी और नब्बे के दशक में भारतीय शिल्प क्षेत्रा के लिए जोखिम में वृद्धि देखी गई है।

बढ़ते संस्थागत हस्तक्षेप के बावजूद, अस्सी और नब्बे के दशक के अंत में शिल्प परिदृश्य में वास्तव में गिरावट देखी गई। उदारीकरण के निर्देशों का पालन करने वाली नब्बे के दशक की औद्योगिक नीतियों ने वास्तव में सब्सिडी–आधारित, संरक्षणवादी–उन्मुख शिल्प संवर्धन उपायों को कमजोर कर दिया। भारतीय शिल्प उत्पादन के पारंपरिक रूप से बंधे, असंगठित उत्पादन आधार के लिए, पूंजीवादी आर्थिक नीतियों और बाजार के नेतृत्व वाली उत्पादन रणनीतियों ने जातीय शिल्प बाजारों पर अतिक्रमण कर लिया है, जिससे देश भर में कारीगर समुदाय के बीच व्यापक विनाश हुआ है (के.के. सुब्रमण्यन, 2006)।

निष्कर्ष– इस प्रकार हमने देखा कि भारतीय शिल्प कला का इतिहास बहुत पुराना है। भारत में शिल्पकारों की हमेशा से ही आवश्यकता रही है। भारतीय कला देश को विदेशों में अपनी एक पहचान तो दिलाती ही है साथ ही इसके माध्यम से देश की आर्थिक स्थिति पर भी सकारात्मक प्रभाव पड़ता है तथा इसके माध्यम से रोजगार भी सृजित होता है।

संदर्भ

1. Sandhya Rani and Das, Socio-Economic Profile of Handloom Weaving Community: A Case Study of Bargarh District, Odisha, Disseveration, National Institute Of Technology, Rourkela, Sundargarh - 769008, Odisha, India, 2015.
2. Hanks, P. (ed.) (1979) Collins dictionary of the English language, London, Collins
3. Harrod, T. (1995) The crafts in Britain in 20th century, New Haven, CT; Yale University Press
4. Campbell Colin (2005) The craft consumer: Culture, craft ad consumption in a post-modern society, Journal of Consumer Culture, Vol.5 (1), pp. 23-42
5. Timothy, Scarse. J. (2003), Precarious production: globalization and artisan labour in the Third World, Third World Quarterly
6. Patterson, T.C. (2003) Marx's ghost: Conversation with archaeologists. Oxford, Berg Publishers, 33-62
7. Shortman, E.M. and P.A. Urban (2004). Modeling the roles of craft production in Ancient Political Economies, Journal of Archeological Research, 12(2), 185-226

8. Stein, C.J. (1998) Heterogeneity, power, and political economy: Some current research issues in the Archeology of old world complex societies, Journal of Archeological Research, 6(1), 35-50
9. Stein, C.J. and M.J. Blackman (1993) The Organisational context of specialized craft production in early Mesopotamian states, Research in Economic Anthropology,14, 35-59
10. Brenner, R (1989) Bourgois revolution and transition to capitalism, In A.L.Beier, D. Cannadine and J.M.Rosenheim (eds.) The first modern society: Essays in English history in honour of Lawrence Stone, pp 271-304, Cambridge, Cambridge University Press.
11. Patterson, T.C. (2005) Crat specialization, the reorganization of production relations and state formation, Journal of Social Anthropology, 5(3), 307-337
12. Government of India (1981) India: India: Art and architecture in ancient and medieval periods, Publication Division, New Delhi, Ministry of Information and Broadcasting.
13. Government of India (1981) Government and Economic life in Ancient and Medieval Periods, Publication Division, New Delhi, Ministry of Information and Broadcasting.
14. Nath Sen Sailendra (1999) Ancient Indian history and civilization (2nd Ed.), New Delhi, New Age International Pub P. 34
15. Basham, A.L (ed.) (1975) A cultural history of India, Oxford, Oxford University Press
16. Hunter, William (1973) The Guzetter of India: Vol. II- History and Culture, New Delhi, Ministry of Information and Broadcasting
17. Sharma. R.S. (1995) Looking for the Aryans, Madras, Arya Samajam
18. Sharma, R.S. (1987) Urban Decay in India (C 300 – C 1000) Delhi
19. Government of India (1979) India-Historic and Proto-historic periods, Publication Division, New Delhi, Ministry of Information and Broadcasting
20. Giles, H.A. (tr.) (1933), The Travels of Fa-Hsien or record of Buddhistic kingdom, Cambridge, Cambridge University Press
21. Adhya, G.L (1980) Early Indian economics- studies in the economic life of Northern and Western India C.200 BC-300 AD, Mumbai
22. Sharma R.S. (1952) Transition from ancient to Middle Ages in India, Patna, K.K.P. Jaiswal Research Institute.
23. Chattopadhyay, Kamaladevi (1976). Inner Recesses Outer Spaces, New Delhi: Navrang Publishers
24. Sastri, Nilakata K.A. (1976) A history of South India, 4th edition, Madras
25. Shanti Swarup (1996) Mugal art: a study of handicrafts, Delhi: Agam Kala Prakashan
26. Siddqi.M.H (1973) Agrarian change in the Northern Indian state: UP, 1819-33, Oxford, Oxford University Press.
27. Gadgil D.R. (1972) Industrial evolution of India in recent times- 1860-1939, Oxford: Oxford University Press

28. Krishnamurthy J (1982) Survival politics and work, Indian Women, 1880-1980, Special edition of Indian economic and social history review, xx edition.
29. Roy, Tirthankar (1993) Artisans and Industrialization, Oxford university Press, New Delhi pp ix
30. Jaitly, Jaya (2001) Visvakarmas Children: Stories of India's craftspeople, Concept publishing house, New Delhi
31. Subrahmainian K.K (2006),The handicraft industry in Kerala,Danish Books,New Delhi, p 32-72
32. Pais Jesim (2006) Tourism employment : An analysis of foreign tourism in India, Working paper 2006/04,New Delhi, Institute of social and industrial development.